सौजन्य: मां पाताल भैरवी मन्दिर, श्री बर्फानीधाम,
राजनांदगांव, छत्तीसगढ़, भारत

तृतीय महाविद्या

श्री षोडशी महाविद्या (श्रीविद्या)

श्रीविद्या गुरु परम्परा से प्राप्त विद्या है। यहाँ श्रीविद्या के कुछ महत्वपूर्ण मन्त्रों का दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है। षोडशी ही बाला, त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी, महात्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता महात्रिपुरसुन्दरी नामों से अभिव्यक्त होती हैं तथा इनकी पूजा श्रीयन्त्र पर करने का विधान है। साधकगण गुरु परम्परा मार्ग का अवलम्बन लेकर ही साधना में प्रयुक्त होवें। यथा,

अथ मन्त्राः

कादि पञ्चदशी मन्त्र

''क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं''

कादि पञ्चदशी ब्रह्मविद्या मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ''क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं''

उपरोक्त विद्यामन्त्र का विस्तार से अध्ययन हेतु हमारे पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ ''**श्रीविद्या-रहस्यम**'' से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसके अलावा ''**श्री विद्या रत्नाकरः**'' का अध्ययन साधकों के लिए लाभकारी है।

हादि पञ्चदशी मन्त्र

''ह स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं ह स क ल ह्रीं''

सादि पञ्चदशी मन्त्र

''स क ल ह्रीं क ए ई ल ह्रीं ह स क ह ल ह्रीं''

षोडशी मन्त्र

श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं
सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में उपरोक्त षोडशी मन्त्र का पूजा विधान दिया गया है।

महाषोडशी मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं
सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं। एवं

ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं
स्त्रीं ऐं क्रों क्रीं ईं हूं। (परम्परानुसार)

गुह्यषोडशी मन्त्र

ॐ ह्रीं ॐ श्रीं ह्रीं सौः क्लीं ऐं हसकल ह्रीं हसकहल ह्रीं सकल ह्रीं
ॐ ह्रीं ॐ श्रीं ह्रीं।

भगवती षोडशी पञ्चवक्त्र (सदाशिव) की शक्ति हैं। पञ्चवक्त्र शिव के पाँच मुख पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण एवं ऊर्ध्व में क्रमशः तत्तपुरुष, सद्योजात, वामदेव, अघोर एवं ईशान नामों से जाने जाते हैं। इनकी शक्ति षोडषी से ही भूः, भुव एवं स्व रूप उत्पन्न हुये इसलिए इनका नाम त्रिपुरसुन्दरी भी है। पाँच तत्त्व क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश पाँच गुणों से परिपूर्ण है। यथा पृथ्वी के गुण रस, रूप, स्पर्श, गन्ध एवं शब्द हैं, जल के गुण रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द हैं, अग्नि के गुण रूप, स्पर्श एवं शब्द हैं, वायु के गुण स्पर्श एवं शब्द हैं तथा आकाश का गुण शब्द हैं। इस प्रकार से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश के गुणों की संख्या क्रमशः 5, 4, 3, 2,1 होते हैं जिनका योग 15 होता है। श्रीविद्या के पञ्चदशी मन्त्र में इन्हीं 15 गुणों का अवसान होता है। श्रीविद्या के साधकों को श्री आद्यशङ्कराचार्य विरचित भावनोपनिषद् का अध्ययन सूक्ष्मता पूर्वक करनी चाहिए इससे उन्हें मन्त्र, तन्त्र एवं यन्त्र के स्वरूप का बोध होगा जिससे अन्तर्याग की क्रिया भी सम्पन्न होगी। पराचित्ति अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाली विद्या श्रीविद्या है। मन्त्र का पर्यावसान तन्त्र में, तन्त्र का पर्यावसान यन्त्र में होता है और मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र का संवेद स्वरूप श्रीविद्या है। मन्त्र कारण शरीर है जिसमें परावाक् स्थित है, तन्त्र सूक्ष्म शरीर है तथा यन्त्र स्थूल शरीर है। यह तीनों हमारे शरीर में विद्यमान है एवं शरीर के समस्त अव्यवों को श्रीचक्र रूप में भावित करने से यह विद्या आत्मतत्त्व का बोध कराती है। कादिपञ्चदशी मन्त्र का अर्थ श्रीदेव्यथर्वशीर्षम् में निम्नानुसार बतलाया गया है -

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि-इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं), ह, स-वर्ण, मातरिश्वा-वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं), स, क, ल-वर्ण और माया (ह्रीं)- यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और वह ब्रह्मरूपिणी है ।।14।।

शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीपूजा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत-शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्वतत्त्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी-यही इस मन्त्र का भावार्थ है। यह मन्त्र सब मन्त्रों का मुकुटमणि है और मन्त्रशास्त्र में पञ्चदशी आदि श्रीविद्याके नाम से प्रसिद्ध है। इसके छः प्रकार के अर्थ अर्थात् भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, लौकिकार्थ, रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ 'नित्यषोडशिकार्णव' ग्रन्थ में बताये गये हैं।

'स्वात्मैव ललिता प्रोक्ता, मनोज्ञ-विश्व-विग्रहा' -अर्थात्

अपनी आत्मा ही ललिता है। आत्मा को जितना ललित, जितना मनोज्ञ, जितना कोमल-सुन्दर गणित करेंगे उसी परिणाम में सत्ता का स्फुरण होगा। कामेश्वरी, ललिता, बाला-बाला से बालात्रिपुरा, त्रिपुराबाला, बाला-सुन्दरी, बाला-त्रिपुरसुन्दरी तथा महात्रिपुर-सुन्दरी, त्रिपुरा, त्रिपुरा से त्रिपुरभैरवी, वाक्-त्रिपुरा महालक्ष्मी-त्रिपुरा, त्रैलोक्यस्वामिनी-त्रिपुरा इत्यादि अन्य त्रिपुराएँ, और भैरवी, भैरवी से भैरवी के भेद-बाला-भैरवी, सम्पद्प्रदा-भैरवी, चैतन्य-भैरवी, कामेश्वरी-भैरवी, अघोरभैरवी आदि अन्य भैरवी के भेद, तथा महात्रिपुरसुन्दरी से श्रीललिता-महात्रिपुरसुन्दरी, श्रीललिताराजराजेश्वरी, षोडशी, महाषोडशी, सप्तदशी तथा षोडशी के अन्य भेद-सब श्रीविद्या के नाम से पुकारे जाते हैं। दश महाविद्याओं की गणना में षोडशी का नाम तीसरा है।

कामो योनिः कमला वज्रपाणि-र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्यैषा विश्वमातादिविद्योम् ।।

अर्थ- काम (क), योनि (ए), (कमला) (ई), वज्रपाणि-इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं)। ह, स-वर्ण, मातरिश्वा- वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं)। स, क, ल-वर्ण, और माया (ह्रीं), यह सर्वात्मिका जगन्माता की मूल विद्या है और यह ब्रह्मरूपिणी है।

(शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्मा-विष्णु-शिवत्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीरूपा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासकात्मका, समरसीभूत शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूप का निर्विकल्प ज्ञान देने वाली, सर्वतत्त्वात्मिका, महात्रिपुरसुन्दरी-यही इस मन्त्र का भावार्थ है । यह मन्त्र सब मन्त्रों का मुकुटमणि है और मन्त्रशास्त्र में पञ्चदशी कादि श्रीविद्या के नाम से प्रसिद्ध है । इसके छः प्रकार के अर्थ अर्थात् भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, कौलिकार्थ, रहस्यार्थ तत्त्वार्थ 'नित्यषोडशिकार्णव' ग्रन्थ में बताये हैं । इसी प्रकार 'वरिवस्यारहस्य' आदि ग्रन्थों में इसके और भी अनेक अर्थ दर्शाये गए हैं । श्रुति में भी ये मन्त्र इस प्रकार से अर्थात् क्वचित् स्वरूपोच्चार, क्वचित् लक्षणा और लक्षित लक्षणा से और कहीं वर्ण के पृथक्-पृथक् अवयव दर्शाकर जानबूझकर विश्रृंखलरूप से कहे गये हैं । इससे यह मालूम होगा कि ये मन्त्र कितने गोपनीय और महत्त्वपूर्ण हैं ।)

एषात्मशक्तिः । एषा विश्वमोहिनी । पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा ।
एषा श्रीमहाविद्या । य एवं वेद स शोकं तरति ।

अर्थ- यह परमात्मा की शक्ति हैं । यह विश्वमोहिनी हैं । पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण धारण करने वाली हैं । यह '**श्रीमहाविद्या**' हैं । जो ऐसा जानता है वह शोक को पार कर जाता है ।

'श्रीविद्या' के बारह उपासक प्रसिद्ध हैं- 1- मनु, 2- चन्द्र, 3- कुबेर, 4- लोपामुद्रा, 5- मन्मथ, (कामदेव), 6- अगस्ति, 7- अग्नि, 8- सूर्य, 9- इन्द्र, 10- स्कन्द (कुमार कार्तिकेय), 11- शिव और 12- क्रोधभट्टारक (दुर्वासामुनि) ।

मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः ।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा ।

इनमें प्रत्येक का पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय था । चतुर्थी और पञ्चम अर्थात लोपामुद्रा और मन्मथ- इन्हीं दो के सम्प्रदाय वर्तमान में प्रचलित हैं । उनमें भी अधिकतर मन्मथ-सम्प्रदाय अर्थात् कामराज-विद्या का ही सर्वतोमुख प्रचार है । त्रिपुरारहस्य-माहात्म्यखण्ड में वर्णित कथाओं के अनुसार कामदेव ने अपनी निर्व्याज आराधना से श्रीमाता को प्रसन्नकर उससे अनेक दुर्लभ वर प्राप्त किये और स्वोपासित काम-राजविद्या के उपासकों के लिए भी बहुत-सी सुविधाएँ सुलभ करा दीं । तभी से ही कामराजविद्या का विशेष प्रचार होने लगा । श्रीविद्या-मन्त्र श्रीयन्त्र की पूजा का अभिन्न अङ्ग है । मन्त्र के चार रूप हैं-बाला त्रिपुरसुन्दरी त्र्यक्षरी, पञ्चदशाक्षरी, षोडशी एवं महाषोडशी । फिर इनके अनेक अवान्तर भेद हैं । इनमें कादि और हादि दो मुख्य भेद प्रचलित हैं । कादि मन्त्र की उपासना-परम्परा अत्यन्त विशाल है । आचार्य शङ्कर ने भी '**त्रिशती**' पर भाष्य लिखकर कादि मन्त्र को ही विशेष महत्त्व दिया है । जिसे परम्परा से साधना करने वाले पारम्परीण गुरु के द्वारा श्रीयन्त्र की दीक्षा प्राप्त हो एवं जो श्रीयन्त्रार्चन-पद्धति का यथावत् ज्ञाता हो, वही श्रीयन्त्र के अर्चन का अधिकारी है । इस अर्चना के लिए तन्त्र-शास्त्रों में वाम और दक्षिण- दो मार्ग बतलाये गये हैं । वाममार्ग की उपासना पुराकाल में सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित थी, किंतु बौद्धकाल में उसका घोर दुरुपयोग हुआ और वह सम्प्रदाय छिन्न-भिन्न होकर अस्त-प्राय हो गया । तदनन्तर आद्यशङ्कराचार्य ने दक्षिणमार्ग का एक परिष्कृत रूप लोकोपकारार्थ प्रस्तुत किया । आजतक अनवरत रूप से वही परम्परा चली आ रही है ।

श्रीविद्या के तीन रूप हैं- 1. स्थूल, 2. सूक्ष्म और 3. पर । तीनो का तो इस सीमित लेख में आवश्यक विवेचन-सम्भव नहीं है । अतः यहाँ विशेषरूप से इसके स्थूलरूप के निरूपण का प्रयास किया जा रहा है । जहाँ स्थूलरूप श्रीचक्रार्चन और सूक्ष्मरूप श्रीविद्या-मन्त्र है वहीं पर-विद्या देह में श्रीचक्र की भावना की विधि है । आचार्य शङ्कर के मतानुसार चौंसठ तन्त्रों का व्याख्यान करने के अनन्तर पराम्बा के निर्बन्ध से श्रीविद्या का व्याख्यान भगवान् सदाशिव ने किया, अतः यह 65 वाँ तन्त्र है । आचार्यों ने 'वामकेश्वर-तन्त्र' को- जिसमें 'नित्याषोडशिकार्णव', तथा 'योगिनीहृदय', दो चतुश्शती हैं- ही श्रीविद्या का पूर्णरूप से विधान करने वाला 65 वाँ (मतान्तर से 78वाँ तन्त्र माना है ।)

भगवान् शिव ने प्राणिमात्र के कल्याण के लिए जो उपदेश दिया, वह 'आगम' तथा 'आम्नाय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है । यह उपदेश उनके पूर्वादि चार दिशामुख एवं ऊर्ध्वमुख से दिया गया था, अतः 1 - पूर्वाम्नाय, 2 - दक्षिणाम्नाय, 3 - पश्चिमाम्नाय, 4 - उत्तराम्नाय तथा 5 - ऊर्ध्वाम्नाय माने गये । कण्ठ में एक 'अधोमुख' की भावना से 6 - अधराम्नाय भी प्रवर्तित हुआ । इस आम्नायषट्क के साथ ही दिशागत दो-दो कोणों के सम्मिलन से चार और आम्नाय उद्भूत हुए । यथा - पूर्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय के योग से आग्नेयाम्नाय, 2 - दक्षिणाम्नाय तथा पश्चिमाम्नाय के याग से नैर्ऋत्याम्नाय, 3 - पश्चिमाम्नाय एवं उत्तराम्नाय के योग से वायव्याम्नाय तथा 4 - उत्तराम्नाय और पूर्वाम्नाय के योग से ईशानाम्नाय का उद्भव हुआ ।

श्रीचक्र का सृष्टयादिक्रम से पूजाक्रम-

पूरे श्रीचक्र में निम्नलिखित रूप से पाँच व्यवस्थाएँ ज्ञातव्य हैं-

1 - सृष्टिक्रमानुसारी श्रीचक्रपूजाक्रम निम्नानुसार बनता है ।

1 - बिन्दु, 2 - त्रिकोण, 3 - अष्टदल, 4 - अन्तर्दशार, 5 - बहिर्दशार, 6 - चतुर्दशार, 7 - अष्टकोण, 8 - षोडशदल, 9 - वृत्तत्रय तथा 10 - भूपुर ।

2 - स्थितिक्रमानुसार श्रीचक्र का पूजाक्रम कुछ इस प्रकार है-

1 - भूपुर, 2 - वृत्तत्रय, 3 - षोडशदल, 4 - अष्टदल, 5 - बिन्दु, 6 - त्रिकोण, 7 - अष्टकोण, 8 - अन्तर्दशार, 9 - बहिर्दशार, 10 - चतुर्दशार,

3 - संहारक्रमानुसार श्रीचक्र का पूजाक्रम शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है -

1 - भूपुर, 2 - वृत्तत्रय, 3 - षोडशदल, 4 - अष्टदल, 5 - चतुर्दशार, 6 - बहिर्दशार, 7 - अन्तर्दशार, 8 - अष्टदल, 9 - त्रिकोण तथा 10 - बिन्दु ।

4 - अनाख्याक्रम में वही श्रीचक्र की पूजा सृष्टिक्रमात्मक चक्र के अनुसार ही सभी चक्रों की तथा उसी में दो स्पन्दीचक्रों में समष्टि मानने से सम्पन्न होती है ।

5 - भासाक्रम में भी सृष्टिक्रमात्मक सभी चक्र एवं बिन्दु के अन्तर्गत चक्रों की भावना करके उनमें षड्डाकिनी, पञ्चपञ्चिका और षडध्व के पूजास्थल रूप '1 - महाबैन्दवचक्र, 2 - षट्कोणचक्र, 3- मध्य एवं कोणचतुष्टय तथा 4 - भूपुर के मध्य और बहिर्भाग की समष्टि मानकर पूजा की जाती है ।

आम्नायभेद

श्रीविद्या के प्रधान छः आम्नाय हैं, जो पूर्व आदि चार दिशा और उर्ध्व तथा अधः - यों छः दिशाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनके अतिरिक्त ईशान आदि चार उपदिशाओं के नाम से प्रसिद्ध और भी आम्नाय हैं, जिनको चार उपाम्नाय कहते हैं तथा ये चारों चार दिशाओं के अपने मुख्य आम्नायों के साथ यथायोग्य मिले होते हैं । जैसे पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय, पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय एवं ऊर्ध्वाम्नाय तथा अधराम्नाय - गणनाक्रम में

अधराम्नाय यद्यपि यहाँ सबके अन्त में आया है तथापि उपासना-क्रम में हम इसको सबसे पहले रखते हैं। इन छः आम्नायों में प्रत्येक सृष्टि, स्थिति, संहार, अनाख्या और भासा- ये पाँच क्रम होते हैं, जिनका मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र तक में (मतान्तर ब्रह्मरन्ध्रतक में) समन्वय हो जाता है। इनमें से प्रत्येक की आम्नायनायिका होती है। जैसे कि-अधराम्नाय की 'तारा', पूर्वाम्नाय की 'भुवनेश्वरी', दक्षिणाम्नाय की 'दक्षिणकाली', पश्चिमाम्नाय की 'कुब्जिका', उत्तराम्नाय की 'गुह्यकाली' और ऊर्ध्वाम्नाय की 'बाला-महात्रिपुरसुन्दरी'। ये आम्नायनायिका प्रत्येक उपाम्नाय की भी होती हैं। इसमें सप्तशती में वर्णित महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती और चामुण्डा- ये क्रमशः ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैर्ऋत्य की नायिकाएँ हैं फिर इन छः आम्नायों में से पूर्वाम्नाय, दक्षिणाम्नाय और पश्चिमाम्नाय के पञ्चक्रम के अन्तर्गत जो सृष्टि, स्थिति और संहारक्रम हैं, उनमें प्रत्येक के भिन्न-भिन्न चक्र, मुद्रा, दर्शन, योगिनी, सिद्धि तथा चक्रनायिका होते हैं जिनको हमने आगे जाकर संक्षिप्तरूप में दिखा दिया है। इनमें अनाख्या और भासा की अपने-अपने आम्नायक्रम के समष्टिचक्र में पूजा होने के कारण इनके अपने पृथक् चक्र, मुद्रा आदि नहीं होते। इसी प्रकार अधराम्नाय, उत्तराम्नाय और ऊर्ध्वाम्नाय के भी समष्टि में (बिन्दू से भूपुर पर्यन्त में) पूजा होने के कारण उनके अपने पृथक् मुद्रा, दर्शन आदि नहीं होते किन्तु निर्वाणविद्या, शाम्भव, पाशुपत आदि छहों आम्नायों के पृथक्-पृथक् होते हैं। फिर सबसे अन्त में जाकर बिन्दु से ब्रह्मरन्ध्रतक में पञ्चदशी, षोडशी, महाषोडशी, सप्तदशी, अष्टादशी आदि और **'निर्वाणसुन्दरी'**, **'सर्वाधिकार शाम्भवी'** **'महापादुका'**, **'अनुत्तरवादिनी'**, **'सर्वाम्नाय सर्वाधिकार'** एवं **'समयाविद्या'**, **'षोडशी-चक्रेश्वरी'** **'समयानित्या'**, **'दशमहाविद्या'**, **'पञ्चसिंहासन'**, **'पञ्चपञ्चिका'**, **'षडाम्नायसमया'**, **'नवरत्नकुब्जिका'**, **'नवरत्नसुन्दरी'** तथा **'अलेखनी'** आदि सब आ जाती हैं।

इसी प्रकार सभी आम्नायों में प्रत्येक देवता का मूल (मन्त्र), न्यास, ध्यान तथा पञ्चाङ्ग (स्तोत्र) आदि होते हैं। इनमें उपर्युक्त जो अलेखनी विद्या है वह सुन्दरी और काली दोनों की एक ही है। आचार्यों ने केवल समझाने के लिए एक को अनुलोम और दूसरे को विलोम मानकर पृथक् दर्शाया है। अर्थात् श्रीक्रम की अलेखनी को विलोम कर कालीक्रम में जपा जाता है। इसी प्रकार पञ्चदशी आदि विद्या में जब पञ्चदशी (लघुषोडशी) मूलदेवता होगी तब बाला-महात्रिपुरसुन्दरी चक्रनायिका होगा। जब षोडशी (महात्रिपुरसुन्दरी) मूलविद्या होती है तब पञ्चदशी चक्रनायिका होता है। जब सप्तदशी मूलविद्या होगी तब षोडशी चक्रनायिका होगी और जब अष्टादशी मूलविद्या होगी तब सप्तदशी चक्रनायिका होगी।

अब यहाँ पर आम्नायक्रम को समष्टि में समन्वय कर अपनी-अपनी दीक्षा के अनुसार पूर्णाभिषेक से लेकर दिव्य साम्राज्य मेधा तक क्रमशः पुष्पाञ्जलि देकर पञ्चदशी, षोडशी आदि सभी विद्याओं की पूजा विन्दु में ही की जाती है। श्रीविद्या की उपासना के मुख्य तीन क्रम हैं- कालीक्रम, सुन्दरीक्रम और ताराक्रम। इनमें कालीक्रम को 'कुण्डलिनीक्रम' भी कहते हैं और 'कादिविद्या' भी। यह सत्त्व - गुण प्रधान है। सुन्दरीक्रम को 'हंसक्रम' भी कहते हैं और 'हादिविद्या' भी, यह रजोगुण प्रधान है। ताराक्रम को 'समवरोधिनीक्रम' भी कहते हैं और 'सादिविद्या' भी, यह तमोगुण प्रधान है और यही तीन क्रम 'दीक्षा' के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा इनके पूर्ण होने वर साधक शिवस्वरूप बन जाता है।

ब्रह्माण्ड के प्रतीक रूप में श्रीचक्र

जैसे पिण्ड रूप में इस व्यष्टि शरीर को, जिसे पिण्ड ब्रह्माण्ड भी कहते हैं, (स्थूल) ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना जाता है, इस तरह श्रीचक्र को समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना जाता है। जैसे ब्रह्माण सृष्टि-स्थिति-संहार रूप अवस्था त्रयात्मक है, वैसे ही यह देह रूप पिण्ड ब्रह्माण्ड भी उक्त अवस्था त्रयात्मक है, अतएव यह पिण्ड शरीर ब्रह्माण्ड का प्रतीक होता है। इसी तरह सृष्टि, स्थिति, संहार तीनों चक्रों से युक्त होने के कारण यह श्रीचक्र समस्त ब्रह्माण्ड का प्रतीक है। जैसे ब्रह्माण्ड में तीनों लोक हैं, तीनों गुण हैं और महत्तत्त्वादि सभी तत्त्व, सभी गुण और सभी अवस्थाएँ विद्यमान है। इसी तरह श्री श्रीचक्र भी भूपुर से लेकर बिन्दु पर्यन्त के अवयवों में यथायोग्य सभी लोक, सभी अवस्थायें, सभी तत्त्व और शरीर के सभी चक्रों का और सभी धातुओं का समन्वय होने से यह पिण्ड ब्रह्माण्ड का प्रतीक माना गया है। आगमों के अनुसार सौ ब्रह्माण्ड का एक ''**विष्ण्वाण्ड**'' होता है। इस तरह सौ विष्वाण्ड का एक ''**प्रकृत्यण्ड**'', सौ प्रकृत्यण्ड का एक ''**मायाण्ड**'' और सौ मायाण्ड का एक ''**शक्त्यण्ड**'', माना गया है। इस प्रकार हमने ऊपर श्री श्रीचक्र को जो ब्रह्माण्ड का प्रतीक स्वरूप कहा गया है उसमें ब्रह्माण्ड का प्रतीक होता है और साथ ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-नायिका श्री महात्रिपुर-सुन्दरी का भी।

सम्प्रदायगत विशेषता

श्रीचक्र के मुख्य 3 सम्प्रदाय है। हयग्रीव सम्प्रदाय, आनन्द भैरव सम्प्रदाय, और दक्षिणामूर्ति सम्प्रदाय। इनमें हयग्रीव सम्प्रदाय में त्रिवृत्त नहीं होता, आनन्द-भैरव सम्प्रदाय में त्रिवृत्त तो होता है, किन्तु उसमें पूजा नहीं होती एवं दक्षिणा-मूर्ति-सम्प्रदाय में श्रीचक्र में त्रिवृत्त भी होता है और उसमें पूजा भी होती है। जिस-जिस पदार्थ की जो शक्ति है वह सब सर्वेश्वरी श्रीविद्या है और जो जो पदार्थ शक्तिवाले हैं सब महेश्वर स्वरूप हैं। वह सर्वेश्वरी (श्रीविद्या-पञ्चदशी) पञ्चभूत गुण-स्वरूपिणी है अर्थात् पृथ्वी के-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, पाँच गुण, जल के-शब्द, स्पर्श, रूप और रस चार गुण, तेज के-शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुण, वायु के-शब्द और स्पर्श दो गुण और आकाश का एक गुण शब्द सब जोड़कर पञ्चदश (15) गुणात्मिका, पंद्रह अक्षरवाली पञ्चदशी विद्या (पञ्चदशाक्षरी) हुई। प्रथम कूट में पाँच अक्षर, दूसरे में छः अक्षर और तीसरे में चार अक्षर (पञ्चदश अक्षर) तथा इन कूटाक्षरों के (पाँच, छः और चार अक्षरों के) स्वर-व्यंजन भेद से (अर्थात् इनके स्वर और व्यंजन को जोड़कर) सत्ताईस भेद बनें। उनके भेदों के द्वारा पुनः यह पञ्चदशी-विद्या तत्त्वातीत-स्वरूपिणी हुई अर्थात् इसकी भावना तत्त्वातीता की जाती है। (36 तत्वों से परे मानी जाती है।)

इसका यथार्थ अर्थ मन्त्र को स्पष्ट करने से समझने में आयेगा। यथा - पञ्चदशी-विद्या के 15 अक्षरों के तीन खण्ड हैं।

प्रथम कूट के पाँच अक्षर हैं। उसमें चार व्यंजन, तीन स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है। सब मिलाकर नौ हुए। द्वितीय कूट में छः अक्षर हैं। उसमें सात व्यंजन, एक स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है। सब जोड़कर दस हुये। तीसरा कूट चार अक्षर का है, उसमें पाँच व्यंजन, एक स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है। सब जोड़कर आठ हुये। इस प्रकार सत्ताईस हुये। प्रत्येक कूट में अक्षरों के पृथक-पृथक तीन-तीन तत्त्व उत्पन्न हुये। तदन्तर 3*3=9 नौ तत्त्व हुये। अब नौ और सत्ताईस का योग 36 छत्तीस तत्त्व हो गये।

सृष्टि, स्थिति और संहार-चक्र

श्रीयन्त्र के उक्त नव चक्र सृष्टि, स्थिति और संहार के द्योतक हैं । इनमें से बिन्दु, त्रिकोण और अष्टकोण- ये तीन चक्र '**संहारचक्र**' है । अन्तर्दशार, बहिर्दशार और चतुर्दशार-ये तीन '**स्थितिचक्र**'और अष्टदल, षोडशदल और भूपुर- ये तीन चक्र '**सृष्टिचक्र**' कहलाते हैं ।

अपने शरीर में श्रीचक्र की भावना

उच्चकोटि के साधक श्रीचक्र की भावना अपने शरीर में करते हैं अर्थात् साधक-शरीर स्वयं श्रीचक्र है । साधक का ब्रह्मरन्ध्र बिन्दुचक्र, मस्तक त्रिकोण, ललाट अष्टकोण, भ्रूमध्य अन्तर्दशार, कण्ठ बहिर्दशार, हृदय चतुर्दशार, कुक्षि वृत्त नाभि अष्टदल कमल, कटि अष्टदल के बाहर का वृत्त, स्वाधिष्ठान षोडशदल कमल, मूलाधार षोडशदल के बाहर का वृत्तत्रय (त्रिवृत्त), जानु भूपुर की प्रथम रेखा, जङ्घा भूपुर की द्वितीय रेखा, पाद (पैर) भूपुर की तृतीय रेखा है । साधक को यह अवश्य ज्ञातव्य है । इसको जानने वाला साधक शिव, विष्णु और ब्रह्मा के समान है । '**योगिनी-हृदय**' कहता है-

त्रिपुरेशीमहायन्त्रं पिण्डाण्डात्मकमीश्वरि ।
यो जानाति स योगीन्द्रः स शम्भुः स हरिर्विधिः ।।

अर्थात् '**यह श्रीयन्त्र पिण्डात्मक तथा ब्रह्माण्डात्मक है । जो साधक इस बात को जानता है, वह योगीन्द्र शिव, हरि (विष्णु) और ब्रह्मा के समान है ।**

श्रीचक्र की ब्रह्माण्डात्मकता

उच्चतम कोटि के उपासक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को (जगत् को) श्रीचक्रमय मानते हैं । अर्थात् श्रीयन्त्र अशेष ब्रह्माण्डमय है । तथाहि-बिन्दुचक्र सत्यलोक, त्रिकोण तपोलोक, अष्टकोण जनोलोक, अन्तर्दशार महर्लोक, बहिर्दशार स्वर्लोक, चतुर्दशार भुवर्लोक, प्रथम वृत्त भूलोक, अष्टदल अतल, अष्टदल के बाहर का वृत्त वितल, षोडशदल कमल सुतल, वृत्तत्रय तलातल, भूपुर की प्रथम रेखा महातल, द्वितीय रेखा रसातल और तृतीय रेखा पाताल है । ब्रह्मादि देवता, इन्द्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, अश्विन्यादि सत्ताईश नक्षत्र, मेष-वृष आदि बाहर राशियाँ, वासुकि आदि सर्व, यक्ष, वरुण, (गरुड़), मन्दार आदि वृक्ष, रम्भादि अप्सराओं का समूह, कपिल आदि सिद्ध-सङ्घ, वशिष्ठ आदि मुनीश्वर, कुबेर प्रमुख यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, विश्वावसु आदि गायक, ऐरावत आदि आठ दिग्गज, उच्चैःश्रवादि हय, सब प्रकार के आयुध, हिमालय आदि पर्वत, सातों समुद्र, नदियाँ, नगर और राष्ट्र- ये सब श्रीचक्र से उत्पन्न हुए हैं । अतः श्रीचक्र और ब्रह्माण्ड की एकता बराबर ध्यान करने योग्य है । इसका ध्यान करने वाला साधक 'योगीन्द्र' कहलाता है । पिण्ड, ब्रह्माण्ड और श्रीचक्र की एकता का ज्ञान होना महत् पुण्यों का फल है । इसका ज्ञाता शिवरूप हो जाता है । लिखा भी है-

पिण्डब्रह्माण्डयोर्ज्ञाता श्रीचक्रस्य विशेषतः ।
ज्ञात्वा शम्भुफलावाप्तिर्नाल्पस्य तपसः फलम् ।।

'अर्थात् अपने शरीर को तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को श्रीचक्रस्वरूप जानना बड़े भारी तप का फल है । इन तीनों की एकता की भावना से शिवत्त्व प्राप्त होता है ।'

* श्रीचक्र अथवा श्रीयन्त्र *

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म - मन्वस्त्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च, श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ।।

अर्थात्, 'श्रीयन्त्र बिन्दु-त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दशार, अष्टदल, षोडशदल, उसके बाहर तीन वृत्त और त्रिरेखात्मक (तीन रेखाओं वाला) भूपुर से बना हुआ है ।' इस यन्त्र में 43 त्रिकोण, 28 मर्मस्थान और 24 सन्धियाँ होती हैं । तीन रेखाओं के मिलने के स्थान को **'मर्म'** और दो रेखाओं के मिलने के स्थान को **'सन्धि'** कहते हैं ।

इस श्रीयन्त्र में चार ऊर्ध्वमुख त्रिकोण होते हैं जिनको श्रीकण्ठ अथवा शिवत्त्व या शिव-त्रिकोण कहते हैं । अतएव भगवान शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी 11 में ''चतुर्भिः श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पंचभिरपि''- ऐसा लिखा है । श्रीयन्त्र नौ चक्रों से बना है, जिनमें से चार 'शिवचक्र' हैं और पाँच 'शक्तिचक्र' है । अतएव लिखा है-

चतुर्भिः शिवचक्रैश्च शक्तिचक्रैश्च पंचभिः ।
नवचक्रैश्च संसिद्धं श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः ।

इन नौ शिव-शक्ति चक्रों में त्रिकोण, अष्टकोण, दशाद्वय (दो दशार) और चतुर्दशार-ये पाँच शक्तिचक्र कहलाते हैं । बिन्दु-चक्र, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल और चतुरस्त्र- ये चार 'शिवचक्र' कहे जाते हैं । बहिर्दशार के साथ तथा भूपुर चतुर्दशार (चतुर्दशकोण) के साथ श्लिष्ट हैं । अतएव उपरिपरिगणित शिव और शक्तिचक्रों का परस्पर अविनाभाव-सम्बन्ध है, अर्थात् एक दूसरे के बिना से नहीं होते हैं । इसी प्रकार त्रिकोण-शक्तिरूप और त्रिकोण के भीतर का बिन्दु 'पर-शिव' है । अतएव बिन्दु-चक्र के बिन्दु और त्रिकोण का अर्थात् वे परस्पर मिले हुये हैं । श्रीविद्योपासकों के लिये इन शिव और शक्ति चक्रों का विभाग अवश्यमेव ज्ञातव्य है । इस विभाग के ज्ञान के बिना श्रीयन्त्र की पूजा करना निष्फल है । श्रीविद्या के पञ्चदशी मन्त्र में प्रथम कूट के पाँच अक्षर हैं । इसमें चार व्यञ्जन, तीन स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है । द्वितीय कूट में छः अक्षर हैं । इसमें सात व्यञ्जन, एक स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है । तृतीय कूट में चार अक्षर हैं । इसमें पाँच व्यञ्जन, एक स्वर, एक नाद और एक बिन्दु है । श्रीयन्त्र में चार उर्ध्वमुख त्रिकोण होते हैं जिन्हें श्रीकण्ठ या शिवत्व या शिव-त्रिकोण कहते हैं । इसी प्रकार इस यन्त्र में पाँच अधोमुख त्रिकोण होते हैं जिन्हें शिव-युवती, शक्तित्व या शक्ति-त्रिकोण कहते हैं । त्रिकोण, अष्टकोण, दोनों दशार और चतुर्दशार-ये पाँच शक्तिचक्र है तथा बिन्दु-चक्र, अष्टदल कमल, षोडशदल कमल और चतुरस्त्र, ये चार शिवचक्र हैं । श्रीचक्र बयालीस कोणों और नौ आवरणों वाला है । इसमें मुख्यरूप से अट्ठान्नबे शक्तियों का अर्चन होता है । जानकारी के लिये नीचे तालिका में स्पष्ट किया जा रहा है -

आवरण/चक्र का नाम		स्थान
(1) त्रैलोक्य-मोहन चक्र	-	भूपुर की तीन रेखा से निर्मित
(2) सर्वाशापरिपूरक चक्र	-	षोडशदल कमल
(3) सर्वसंक्षोभण चक्र	-	अष्टदल कमल
(4) सर्व-सौभाग्यदायक चक्र	-	चौदह त्रिकोण
(5) सर्वार्थसाधक चक्र	-	बाहरी दस त्रिकोण
(6) सर्वरक्षाकर चक्र	-	अन्दर के दस त्रिकोण
(7) सर्वरोगहर चक्र	-	आठ त्रिकोण
(8) सर्वसिद्धिप्रदायक चक्र	-	मध्य त्रिकोण
(9) सर्वानन्दमय चक्र	-	बिन्दु

अधिष्ठात्री देवी/चक्रेश्वरी		मुद्रायें
(1) - त्रिपुरा	-	सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा
(2) - त्रिपुरेश्वरी	-	सर्वविद्राविणी मुद्रा
(3) - त्रिपुरा-सुन्दरी	-	सर्वाकर्षिणी मुद्रा
(4) - त्रिपुरवासिनी	-	सर्ववशङ्करी मुद्रा
(5) - त्रिपुराश्री	-	सर्वोन्मादिनी मुद्रा
(6) - त्रिपुरमालिनी	-	सर्वमहाङ्कुशा मुद्रा
(7) - त्रिपुरा सिद्धा	-	सर्वखेचरी मुद्रा
(8) - त्रिपुराम्बा	-	सर्वबीजा मुद्रा
(9) - श्री ललितामहात्रिपुरसुन्दरी	-	सर्वयोनि मुद्रा

श्रीविद्या महाविद्या तथा ब्रह्ममयी है। दश महाविद्याओं में प्रथम तीन काली, तारा एवं षोडशी को सर्वप्रमुख माना जाता है और इन तीनों से ही नौ विद्यायें एवं एक पूरक विद्या मिलाकर महाविद्यायें होती हैं। मूल एक ही है जिससे तीन हुईं और सर्वमूलभूत एक ही विद्या श्रीविद्या है। श्रीविद्या का महत्त्व वास्तविक है न कि केवल परिकल्पित अथवा भावनात्मक।

श्रीविद्योपासक की गायत्री उपासना श्रीविद्या साधना में साथ-साथ सम्पन्न हो जाती है। श्रीविद्या की दीक्षा एक प्रकार की क्रियादीक्षा ही मानी जाती है। श्रीचक्र में सारी विद्याओं की पूजा हो जाती है। श्रीविद्योपासक से यह आशा की जाती है कि, वह अध्यात्म के परम् उत्कर्ष का महान अध्यवसाय सम्पन्न करे, इसके उत्तरदायित्वपूर्ण समय और चर्या का पालन करते हुए समाज के चरित्र में पावनतामयी चर्या का चमत्कार भर दे।

.... श्री परमहंसमिश्रजी, परशुरामकल्पसूत्रम् ग्रन्थ से